# राजनीतिक सिद्धान्तों में याज्ञवल्क्यस्मृति का नैतिक पक्ष : एक विमर्श

**डॉ. रवि शंकर***

स्मृतिग्रन्थों में धर्म का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में हुआ है। धर्म से आशय मानव जीवन के सभी अंगों को नियमित करने वाले सिद्धान्त से है। मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे अपनी जिम्मेदारी निभाने की योग्यता प्राप्त करना तथा उसे इसके साधनों से अवगत कराना धर्म का सर्वांगीण स्वरूप है। याज्ञवल्क्यस्मृति में मानव जीवन के सभी अंगों का विशद् विवरण मिलता है, जो बहुत मामलों में मनुस्मृति का अनुसरण करती है। याज्ञवल्क्य कहते हैं, वेद–स्मृति, सज्जनों के आचरण अपने आत्मा के अनुकूल उत्तम कार्य तथा विवेकपूर्ण संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा ये सब धर्म के मूल हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति, धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ होने के कारण धर्म के आधार पर समाज एवं राज्य की सारी व्यवस्थाओं को विवेचित करता है। राज्य एवं समाज की व्यवस्थाओं का निरुपण समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से याज्ञवल्क्य ने किया है। वे नैतिक एवं आदर्श पर आधारित राज–व्यवस्था की स्थापना की बात करते है। जब कहीं धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र में विरोध हो तो धर्मशास्त्र को बलवान माना है।

याज्ञवल्क्य में राजा, पुरोहित, मंत्री एवं अन्य अधिकारियों की नियुक्ति में नैतिक गुणों के समावेश को प्राथमिकता दी है एवं मंत्रियों की नियुक्ति में राजा को ब्राह्मण अर्थात पुरोहित से परामर्श लेने का निर्देश दिया है। याज्ञवल्क्य ने राजा की दिनचर्या भी शास्त्र सम्मत निर्धारित की है। राजा अपनी बुद्धि से शास्त्रों तथा सभी कर्त्तव्यों का चिन्तन करे इस प्रकार का निर्देश भी याज्ञवल्क्य ने दिया है। प्रातःकालीन एवं सायंकालीन संध्या की उपासना करने को भी राजा की दिनचर्या में सम्मिलित किया गया है।

याज्ञवल्क्य ने विधान किया है कि पर राज्य को वश में हो जाने पर उस देश में वहाँ प्रचलित आचार, व्यवहार एवं मर्यादा के अनुसार शासन करना चाहिए एवं राजा को निर्देश दिया है कि वह युद्ध से जीते गये धन को ब्राह्मणों को दे तथा

संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद



प्रजाओं को अभयदान दे क्योंकि यही राजा का सबसे बड़ा धर्म है। राजा को ब्राह्मणों में क्षमाशील, स्नेहियों में सरल, शत्रुओं में क्रोधी तथा नौकरों एवं प्रजाओं में पिता के समान होना चाहिए। स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रजापालन को राजा का पहला धर्म एवं उसके उदार गुणों को आवश्यक बताया गया है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति उदात्त नैतिकता की मान्यता के अनुसार राज्य–शासन की व्यवस्था करता है। सप्तांग राज्य को प्राप्त कर राजा को चाहिए कि वह दृष्टों को दण्ड दे क्योंकि प्राचीन समय में धर्म के रूप में दण्ड को बनाया है। 'दम्नाद् दण्डः' की दण्ड की यह तो यौगिकी संज्ञा है, वस्तुतः धर्म ही दण्ड है। उक्त विधान से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य ने दण्ड व्यवस्था को धर्म से अनुप्राणित ही नहीं किया है बल्कि पर्याय भी बताया है।

याज्ञवल्क्य को दण्ड व्यवस्था भी धर्मानुप्राणित एवं नैतिक तत्त्वों से युक्त अभिप्रेत है क्योंकि राजा द्वारा अधर्मपूर्वक दण्ड देने से उसके स्वर्ग, कीर्ति व लोकों का विनाश होता है और विधिपूर्वक, शास्त्रानुसार दण्ड देने से स्वर्ग, कीर्ति एवं जय की प्राप्ति होती है। इसी तरह जो राजा दण्डनीय लोगों को विधिपूर्वक दण्ड देता है तथा मारने योग्य लोगों को मारता है वह दक्षिणा युक्त यज्ञों का फल प्राप्त है। पूर्वोक्त विधान से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान भी धर्म आधारित है।

याज्ञवल्क्य ने दण्ड प्रयोग हेतु राजा को सच्चा, पवित्र और अच्छे सहायकों से युक्त होना बताया है क्योंकि लोभी और चंचली बुद्धि वाले राजा द्वारा दण्ड का प्रयोग न्यायपूर्वक करना सम्भव नहीं है। जो राजा दण्ड का शास्त्रानुसार प्रयोग करता है वह देवों, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् को आनन्दित करता है अन्यथा शास्त्रविरूद्ध दण्ड के प्रयोग पर वह जगत् के कोप भाजन का शिकार होता है। इस प्रकार याज्ञवल्क्यस्मृति में राजा को धर्म से बाँधकर युक्तयुक्ति न्याय करने का विधान किया है और राजा निरंकुश न होने पाये इसलिए शास्त्रोक्त विधि अनुसार कार्य करने को कहा गया है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में प्रजा पालन को राजा का धर्म बताते हुए कहा गया है कि प्रजा पालन सब प्रकार के दानों से श्रेष्ठ है। इसलिए धर्मशास्त्रानुसार प्रजा पालन करे, तो उसे प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है। कुछ इसी प्रकार आरक्षित प्रजा द्वारा किये जाने वाले पाप में राजा का हिस्सा आधा बताया गया है क्योंकि राजा प्रजा रक्षणार्थ कर लेता है। सभी प्रकार से प्रजा का पालन करना राजा का कर्त्तव्य है। केवल चोर, शत्रु आदि से सुरक्षित रखना और अन्नादि से भरण–पोषण कर देने में ही उसके कर्त्तव्य की समाप्ति नहीं है, अपितु प्रजा को सुशिक्षित व सच्चा नागरिक बनाना भी राजा का कर्त्तव्य है। यह सब तभी हो सकता है, जब राजा अपने को

नियन्त्रित रखते हुए प्रजा को भी असन्मार्ग से तथा असत्कार्य से दूर रखे, इसमें थोड़ी सी असावधानी रहने पर प्रजा में अराजकता तथा स्वेच्छाचारिता आ जाती है और प्रजा अधर्म की ओर प्रवृत्त हो जाती है। प्रजा द्वारा किये गये कार्यों का प्रभाव राजा पर पड़ता है, उसके द्वारा किये गये पाप का आधा हिस्सा राजा का होता है। अतएव राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा को हमेशा सन्मार्ग की ओर लगाये, क्योंकि राजा इन सब कार्यों के लिए प्रजा से कर ग्रहण करता है।

याज्ञवल्क्य ने युद्ध काल में यह व्यवस्था बतायी है जिसमें राजादि धार्मिक कर्त्तव्य की दृष्टि से युद्ध में पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भयवश रणक्षेत्र नहीं छोड़ते, भले ही वीरगति को प्राप्त हो जाये। भूमि आदि के लिए जो लोग युद्ध में सम्मुख लड़ते–लड़ते अकूट शस्त्रों से मारे जाते हैं और पराङ्मुख होकर भागते नहीं वे योगियों की तरह सीधे स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। जो राजा अपने शस्त्रादि बल के नष्ट हो जाने पर भी शत्रु के सामने युद्ध करने के लिए आगे कदम बढ़ाता है उसे प्रत्येक कदम पर एक अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है और जितने कदम युद्ध से पीछे भागता है उतना ही अपना धर्म नष्ट करता है। इस प्रकारसे याज्ञवल्क्य ने राजा व सेना को धार्मिक कर्त्तव्य मानकर युद्ध लड़ने को कहा है क्योंकि पर राज्य द्वारा आक्रमण की स्थिति में प्रजा का रक्षण ही राजा का धर्म है। यदि वह इस कार्य में सही प्रकार प्रवृत्त नहीं होता तोउसे एवं उसके राज्य को हानि हो सकती है इसलिए इसे अधार्मिक कृत्य कहकर निन्दा की गयी है।

समर्पण करने वालों को, हिजड़ों, शस्त्रहीन, दूसरे से युद्धरत, युद्ध से विरत तथा युद्ध दर्शक आदि को नहीं मारना चाहिए। अश्वादि वाहन, सारथी, दूत, ब्राह्मण, स्त्री, जल पीते हुए या भोजन करते हुए राजा या सैनिक पर भी युद्ध में प्रहार नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना धर्मयुक्त नहीं है।

राजा को नियन्त्रित करने के लिए याज्ञवल्क्यस्मृति में अनेक विधान किये गये है जिससे राजा निरंकुश न हो और अपने स्वधर्म प्रजा पालन एवं रक्षण में प्रवृत्त रहे। जो राजा अपने राज्य से अन्यायपूर्वक धन संग्रह करता है। वह जल्दी ही अपने बान्धवों सहित नष्ट हो जाता है अर्थात् राजा कोष की वृद्धि न्यायपूर्वक करे। प्रजा को राजा कष्ट न दे इसके लिए याज्ञवल्क्य ने विधान किया है। कि प्रजा की पीड़ा के सन्ताप से उत्पन्न अग्नि, राजा का कुल, धन और प्राण को नष्ट कर देती है। अतः राजा को बिना कष्ट किये प्रजा का पालन करना चाहिए।

याज्ञवल्क्य ने पर राज्य को वश में करने को भी धर्मसम्मत बताया है, इनके कथनानुसार स्वराष्ट्र के न्यायपूर्वक परिपालन में राजा को जो धर्म प्राप्त होता है वही धर्म दूसरे राज्य को वश में करने पर उसे प्राप्त होता है। मिताक्षरानुसार राजा का



धर्म है कि वह राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करते हुए सभी उपकरणों से सज्जित करे जिससे अन्य राष्ट्रों पर उसका प्रभाव व प्रताप बना रहे। शत्रु आदि को वश में करने के लिए याज्ञवल्क्य ने भी अन्य शास्त्रकारों की तरह साम, दाम, भेद और दण्ड के युक्तियुक्त प्रयोग को अनुमति दी है एवं दण्ड को अन्तिम विकल्प के रूप में प्रयोग करने का निर्देश दिया है।

शत्रु राज्य पर कब आक्रमण करना चाहिए इसका उल्लेख याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार किया है–जब शत्रु का राज्य अन्नादि से पूर्ण हो, सेनादि से बलहीन हो तथा स्वयं अश्वादि से युक्त हो तब चढ़ाई करे। इस प्रकार से राज्य को संवर्द्धित करने हेतु याज्ञवल्क्यस्मृति में कतिपय कूटनीतिक उपाय अपनाने को कहा गया है। जिसमें षाड्गुण्य सिद्धान्त के 'यान' को राज्य के लाभार्थ प्रयुक्त करने पर बल दिया है। क्योंकि राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करना राजा का धर्म है।

याज्ञवल्क्य ने धर्मशास्त्र के ज्ञाता विद्वानों को न्याय–कार्य देखने हेतु नियुक्त करने का विधान किया है और न्यायाधीशों द्वारा धर्मशास्त्र के विरूद्ध कार्य करने पर दण्डित करने का भी निर्देश दिया है। याज्ञवल्क्यस्मृति में धर्मशास्त्र व सदाचार के विरूद्ध रीति से पीड़ित होने वालों के राजा के समक्ष निवेदन को व्यवहार बताया गया है। जिससे पता चलता है कि याज्ञवल्क्य की राजव्यवस्था न केवल धर्मानुप्राणित रही बल्कि धर्म विरूद्ध कार्य करने वालों को दण्डित किये जाने की भी व्यवस्था थी।

याज्ञवल्क्यस्मृति में अपने पूर्व की मनुस्मृति की ही भाँति वर्णानुसार दण्ड व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। लेकिन नैतिकता के पतन पर कठोर दण्ड का प्रावधान भी मिलता है जिससे पता चलता है कि राज–संचालन में कदापि नैतिक मान्यताओं के उल्लंघन को अनुमति नहीं दी गयी है। अन्य स्मृतियों की ही भाँति याज्ञवल्क्यस्मृति का मुख्य लक्ष्य 'मोक्ष' है। जिसके लिए वह गलती करने वालों के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि याज्ञवल्क्य ने राजनैतिक तत्त्वों को नैतिक मर्यादा में सीमित करते हुए, साध्य एवं साधन दोनों की पवित्रता को स्वीकार किया है।

**सन्दर्भः–**


1. धर्म शास्त्र का इतिहास, पी0वी0 काणे, भाग–2, पृ0 2
2. श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्सनः।
   सम्यक्सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।। याज्ञवल्क्यस्मृति 1/7
3. अर्थशास्त्रात्तु बल वर्द्धर्मशास्त्रमितिस्थितिः। याज्ञ0 2/21

4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/327–333
5. यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः।
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः।। याज्ञ0 1/343
6. नातः परतरो धर्मो नृपाणांयद्रणार्जितम्।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं सदा।। याज्ञ0 1/323
7. ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्नः क्रोधनोऽरिषु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता।। याज्ञ0 1/334
8. तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रहमणा निर्मितः पुरा।। याज्ञ0 1/354
9. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/354
10. अधर्मदण्डनं स्वर्गकीर्तिलोकविनाशनम्।
सम्युक्तु दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिजयावहम्।। याज्ञ0 1/357
11. यो दण्डयान्दण्डयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः।। याज्ञ0. 1/359
12. स नेतुं न्यायतोऽशक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना। सत्यसधेन शुचिना सुसहायेन धीमिता।। याज्ञ0 1/355–356
13. पुण्यात्षड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्।
सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम्।। याज्ञ0 1/355
14. अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत्किंचित्किल्बिषं प्रजाः।
तस्मात्तु नृपतेरर्धं यस्मान्दृहणत्यसौ करान्।। याज्ञ0 1/337
15. मिताक्षरानुसारि सुधा, याज्ञवल्क्यस्मृति 1/337
16. य आह्वेषु वध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा।। याज्ञ0 1/324
17. पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्तिनाम्।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम्।। याज्ञ0 1/325
18. तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतम्।
न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम्।। याज्ञ0 1/326
19. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/326
20. अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्धयेत्।



सोऽचिराद्दिगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः।। याज्ञ0 1/340
21. प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणांश्चाऽदग्धा नं निवर्तते।। याज्ञ0 1/341
22. य एव नृपतेधर्मः स्वराष्ट्रपरिपालने।
तमेव कृत्स्नमाप्नोति परराष्ट्रं वशं नयन्।। याज्ञ0 1/342
23. उपायाः साम दानं च भेदो दण्डस्तृथैव च।
सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्धयेयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः।। याज्ञ0 1/346